लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला–3

बौद्धिक सत्याग्रह

विद्या आश्रम
सारनाथ, वाराणसी–221007

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला–3

पुस्तिका : बौद्धिक सत्याग्रह, अक्टूबर 2011, दूसरा संस्करण

पहला संस्करण नवम्बर 2006 में दिल्ली में हुए इण्डिया सोशल फोरम के अवसर पर प्रकाशित किया गया था। इस संस्करण के कवर पृष्ठ तथा पृष्ठ 1, 2, 18, 19, 20 नये बनाये गये हैं।

सहयोग राशि : रु. 10.00

प्रकाशक : विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी के लिये डा. चित्रा सहस्रबुद्धे, समन्वयक, विद्या आश्रम द्वारा प्रकाशित।

पता : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007
ई–मेल : vidyaashram@gmail.com
फोन : 0542–2595120
मोबाइल : 09839275124

वेब साइट : vidyaashram.org

ब्लाग : lokavidyajanandolan.blogspot.com
lokavidyapanchayat.blogspot.com
angadhmangadh.blogspot.com

मुद्रक : सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208, के–1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, वाराणसी–221002

बौद्धिक सत्याग्रह

यह बौद्धिक सत्याग्रह का आवाहन है। अगर हम यह समझें और मानें कि विद्या का वास्तविक घर लोगों के सामान्य जीवन में है तो हमें इस सत्याग्रह का अर्थ समझ में आने लगता है। दो सौ वर्षों के साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक शासन में यदि आम जनता, किसान, कारीगर, महिलायें, आदिवासी, छोटे–मोटे कारोबारी आदि अपने ज्ञान को, न्याय और तर्क के अपने तरीकों को, संगठन और शिक्षा के अपने विचारों को, अपने मूल्यों और सम्बन्धों को बचाकर रख सके हैं और उनके साथ खुद भी बचे रह सके हैं तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने बौद्धिक सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। अब कम्प्यूटर और संचार की प्रौद्योगिकी ने साम्राज्यवाद के पुनर्संगठन और एक नये साम्राज्य के निर्माण का आधार तैयार किया है। अमेरिका के नेतृत्व में यह हो भी रहा है। हम जो सवाल उठा रहे हैं वह यह है कि क्या सूचना के युग में बौद्धिक सत्याग्रह लोगों का साम्राज्य को चुनौती का प्रमुख हथियार है ?

आज अगर हम विद्या किसके पास है और कहाँ है इसके बारे में सोचें तो मुख्य रूप से चार स्थान नज़र आते हैं– (i) धार्मिक मठ एवं सम्प्रदाय, (ii) विश्वविद्यालय, (iii) इंटरनेट और (iv) सामान्य जीवन। इन स्थानों पर विद्या के प्रकार अलग–अलग हैं, उनकी समझ और दर्शन अलग हैं, उसकी भूमिका भी अलग हैं।

धार्मिक मठों एवं सम्प्रदायों की विद्या में एक पारलौकिक तत्व होता है। इस विद्या के परीक्षण के कोई ठोस आधार (कसौटियाँ) नहीं होते। इस विद्या और इसके समाज में विस्तार के चलते विभिन्न मठ एवं मठाधीश साम्प्रदायिक राजनीति का समर्थन करते हैं।

विश्वविद्यालय की विद्या का आधार साइंस में है। 17 वीं सदी के यूरोप से इसका स्पष्ट विकास देखा जा सकता है। यूरोप का साम्राज्य दुनियाभर में फैला। औद्योगिक क्रांति और उपनिवेशीकरण हुआ, दुनियाभर के समाज उजड गये और उनके संसाधन भरपूर लूटे गये। इन सबमें साइंस ने आधार प्रदान किया और यूरोप के शासक वर्गों का कदम से कदम मिलाकर साथ दिया।

इन्टरनेट यह विद्या का नया स्थान है। यहाँ विद्या ज्ञान–प्रबन्धन के रूप में आकार ले रही है। इसमें सोचने का तरीका, तर्क की पद्धति, खोज और नवनिर्माण के तरीके सब कुछ विश्वविद्यालयीय विद्या से अलग हैं। यह संसाधन जुटाने में अभूतपूर्व भूमिका निभा रही है। शासक वर्गों की पुनर्रचना और अन्य वर्गों के साथ सम्बन्ध के नये प्रकार ईजाद कर रही है। वास्तव में यह एक नई दुनिया की आधारशिला तैयार करती है। इस नई दुनिया को फिलहाल

सूचना युग कहा जा रहा है। दुनिया के गरीबों के लिये उत्थान के नये वादे इसके प्रचार–प्रसार का हिस्सा हैं। बहरहाल 1990 में इन्टरनेट आया है और पहले 20 वर्षों में नये किस्म के पूँजीपतियों ने अकूत सम्पत्ति बनाई है और गरीबों की संख्या और गरीबी में कोई अंतर नही आया है। अगर हम अपने देश (भारत) को देखें तो किसानों, मज़दूरों, कारीगरों और आदिवासियों ने लगातार उजाड़ का सामना किया है, उनकी गरीबी बढ़ी है।

सामान्य जीवन एक ऐसी विद्या का स्थान है जिससे सबका परिचय है। कारीगरों या किसानों की विद्या केवल कोई तकनीकी जानकारियों और क्षमताओं का भण्डार नही होती। स्वास्थ और शिक्षा के विचार भी उसके अभिन्न अंग होते हैं। महिलाओं और आदिवासियों की तरह ही उनकी भी एक प्राकृतिक मूल्यों पर आधारित विश्वदृष्टि होती है। यह लोकविद्या है जो सत्य और न्याय के आग्रह पर टिकी होती है। यह कोई इन लोगों के पास आधुनिक विकास के बावजूद बची हुई चीज नहीं है। इसमें अपनी गति है। औद्योगिक समाज की तकनीक, शिक्षा के प्रकार, स्वास्थ्य रक्षा के तरीके इत्यादि बडे पैमाने पर लोकविद्या में आत्मसात हैं। ज्ञान आधारित समाज से भी कुछ लेने में सामान्य जीवन और लोकविद्या को कोई दिक्कत नही है, बस उसकी कसौटी अपनी होती है, परख के तरीके अपने होते हैं, उद्देश्य अपने होते हैं। औद्योगिक समाज के आक्रामक तरीकों के बावजूद लोग ज़िन्दा रह सके और अपना एक जीवन बरकरार रख सके इसमें लोकविद्या की बड़ी भूमिका है। लोकविद्या आचरण ही बौद्धिक सत्याग्रह है।

हमें विद्या पर ऐसी बहस की आदत है जो सबके समझ में नहीं आती। इसलिये नहीं कि लोग कम पढ़े–लिखे हैं बल्कि इसलिये कि विश्वविद्यालय का तरीका (अब इंटरनेट का भी) ऐसा बनाया गया है कि सबके समझ में न आये। अगर एक दूसरी दुनिया बननी है तो यह ज़रूरी है कि विद्या की बहस सबको समझ में आये। यदि ऐसा नही हुआ तो बदलाव के नाम पर इसी दुनिया का एक दूसरा संस्करण तैयार हो जायेगा। इसलिये विद्या पर बहस बढ़ाने के लिये हम यह तरीका अपना रहे हैं। **सूत्र वाक्यों पर अलिखित ज़मीनी बहस।** सही–गलत की बहस, फायदे–नुकसान की बात, सुंदर–असुंदर की चर्चा। आगे के पेजों में आज हो रहे बदलाव को लोकविद्या दृष्टि से चित्रित करने का प्रयास किया गया है यानि इस बदलाव और समाज के विद्या पक्ष के बीच रिश्ते की बात की गई है। यह भी कहा जा सकता है कि इस बदलाव के विद्यागत आधार को खोलकर रखने की कोशिश की गई है। हम भी बृहत समाज के बौद्धिक सत्याग्रह में शामिल हो सकें इसकी तैयारी की एक कोशिश की गई है।

खुलकर बोलिये और असहयोग का रास्ता अपनाइये

cnyko ds uke

oS'ohdj.k

nqfu;k ds gj dksus ls] gj xfrfof/k ij
fgLlk ¼iw¡th½ mBkus dh 0;oLFkk

cktkjhdj.k

ewrZ vkSj vewrZ lHkh dks cktkj esa
cspus ;ksX; cukus dh gksM+A

lwpuk&lapkj

lwpuk dks iw¡th dk :i nsus dh fØ;kA

dkjiksjsV nqfu;k

iw¡th ij ,dkf/kdkj cukus okys
0;kolkf;d laLFkku

cnyko ds LFkku

m|kx % cMh bdkbZ ls NksVh bdkbZ
;k
igyh nqfu;k ls rhljh nqfu;k

d`f"k % jklk;fud ls tSo

f'k{kk % fo'ofo|ky; ls bUVjusV

0;kikj % nwj dk 0;kikj

Kku % lkbal ls Kku&icU/ku

ykHk mBkus okys u;s {ks=

lk¶Vosvj m|ksx

euq"; Je dk de ls de bLrseky djus dh fo/kk x<us dk m|ksx

lwpuk ds laxBu ,oa izfØ;kvksa dh Hkk"kk izkS|ksfxdh

lapkj

eksckby] bZ&esy] baVjusV

ehfM;k

flusek] Vh- oh-] baVjusV

euksjatu

i;ZVu] flusek] Vh- oh-] laxhr] [ksy

f'k{kk

f'k{kk dk futh laLFkku

dEI;wVj o izcU/ku dh f'k{kk

fpfdRlk

ltZjh ij vk/kkfjr fpfdRlk

Ykkd thou ij iHkko

uqdlku eas	Qk;ns eas
dkjhxj	fo'k"kK
fdlku	m|kxifr
fL=;k	0;kikjh
nqdkunkj	mPp f'kf{kr
ukStoku	
etnwj	
vkfnoklh	

u;s ;qx dk vkjaHk

vkS|ksfxd lekt dk var

vkSj

lwpuk ;qx dk izkjaHk

vkS|ksfxd Økafr ds ckn ls /khjs&/khjs djds iwjh nqfu;k esa 'kfDr vk/kkfjr m|ksxksa dk opZLo gks x;k FkkA

vc lwpuk rduhdh ;kfu dEI;wVj vkSj lapkj rduhdh dk opZLo cu jgk gSA

lwpuk rduhdh dk vf/kdkf/kd bLrseky djus okys lekt dks gh Kku vk/kkfjr lekt dgk tk jgk gSA

Kku dgk¡ gS\

bZVjuZV esa

;g Kku ds lkxBu (lsdyu] ifØ;k] lEizs"k.k] lapkj]oLrq dj.k) dk Kku dk ntkZ nsrk gSA

bls Kku dk izcU/ku dgrs gSA

fo'ofo|ky; esa

;gk¡ Kku lkbal vkSj lkbal vk/kkfjr fo"k;ksa ds :i esa gksrk gSA

lekt esa

;gk¡ Kku yksd thou esa fc[kjk gksrk gSA

;g **yksdfo|k** gSA

lkbal vkSj yksdfo|k

lkbal

vkS|ksfxd lekt dk Kku gSA

vkSj

fo'ofo|ky; dh fo|k gSA

lkbal Lo;a dks Kku dk ,dek= oS/k lzksr ?kksf"kr djrk gSA

lkbal yksdfo|k dks Kku dk ntkZ ugha nsrkA

yksdfo|k

yksd thou esa xfr'khy Kku gSA

yksdfo|k esa lHkh fo|k&ijEijkvksa

dks LFkku gSA

eq[;r% fdlku] dkjhxj] vkfnoklh] fL=;kWa] nqdkunkj

yksdfo|k ds Lokeh gSaA

;kfu

lekt ds yxHkx 80 Qhlnh yksx yksdfo|k ds Lokeh gSaA

lkbal vkSj Kku&izcU/ku

lkbal

HkkSfrd txr dh oLrqvksa ds xq.k] /keZ o O;ogkj dks
le>us dh ,d fo/kk gSA
bl fo/kk dk tUe vkSj fodkl
;wjksi esa gqvkA
;g vkS|ksfxd Økafr dk okgd Kku gSA
mRiknu dh xfr dks c<+kus dk Kku gSA
e'khu vkSj izfØ;kvksa dk Kku gSA

Kku&izcU/ku

;g vefjdh fo|k gSA
bl fo|k ds vuqlkj Kku ,d oLrq ¼eky½ gSA
fdlh Hkh oLrq ds mRiknu ds dbZ rjhds gksrs gSA Kku
dks Hkh ;gh ykxw gSA
Kku dh fofHkUu fo/kkvksa ls Kku ds VqdM+ksa dks NkaVdj
mUgsa iqu%lxfBr dj bLrseky (cpu) ;ksX; cukus dh fØ;k
Kku dk çcU/ku gSA

yksdfo|k vkSj Kku&izcU/ku

yksdfo|k

yksdfo|k Kku dk lcls cM+k Hk.Mkj gSA

yksdfo|k futh lEifRRk ugha gksrh cfYd lekt dh lEink gksrh gSA

yksdfo|k viu s fudV ds ifjos'k dks fujarj le`) djrs gq;s lexz dks le`) djus dk fopkj gSA

Kku&çcU/ku

Kku&çcU/ku Kku dk fo'ofo|ky; vkSj lekt nksuksa txg ls mBk jgk gSA

Kku&çcU/ku ls Kku ij futh ekfYkdkuk gksrk gSA
Kku&çcU/ku Kku ds VqdMksa dks muds ifjos'k ls vyx djds mBkrk gSA

Ykksdfo|k

- lc Kku yksdfo|k ls ‘kq: gksrk gS vkSj yksdfo|k esa okil vkrk gSA
- tks Kku yksdfo|k esa okil ugha vkrk og euq”; fojks/kh gksrk gSA
- vejhdh vkSj ek;koh fo|kvksa esa peRdkj vkSj ‘kks”k.k nksuksa dk gh vk/kkj gksrk gSA
- yksdfo|k esa dk;Z vkSj fl)kar esa Hksn ugha gSA
- yksdfo|k yksxksa ds fgr esa] yksdi{k ysus okyh fo|k gSA
- yksdfo|k iqth vkSj lRrk ls eqdkcys dh fo|k gSA

VdjkgV dk u;k LFkku

Kku vkj Kku&izcU/ku
ds chp Vdjkgv

;kfu

Kku/kkjh ¼fo/k/kj½ vkj
Kku&izcU/ku djus&djkus
okyksa ds chp Vdjkgv

lektokn

lkearokn

ewyr% Ñf"k ds laxBu ls iwath vkSj lÙkk cVksjus dh 0;oLFkk

iwathokn

ewyr% m|ksxksa ds laxBu ls iwath vkSj lÙkk cVksjus dh 0;oLFkk

lwpuk ;qx

ewyr% Kku ds laxBu ls iwath vkSj lÙkk cVksjus dh 0;oLFkk

D;k Qdl g\

vk|kfxd lekt	Kku vk/kkfjr lekt
Je dk lxBu gkrk gA	lpuk dk lxBu gkrk gA
lkbl dk loJ"B Kku dk ntk gA	Kku&icU/ku dk loJ"B Kku dk ntk gA
Kku d lxBu dk LFkku fo'ofo|ky; gA	Kku d lxBu dk dEl;Vj&bUVjuV l fd;k tkrk gA
;g mifuo'khdj.k d ekQr cukA	;g o'ohdj.k d lkFk cu jgk gA
bldk dUæ ;jki e FkkA	bldk dUæ vefjdk e gA

अगली मुक्ति की लड़ाई विद्या के सवाल पर होगी

21वीं सदी में मानवमुक्ति के संघर्षों की बुनियाद विद्या के सवाल पर ही टिकेगी। पश्चिम में दो दशकों पहले से सूचना का प्रश्न सबसे अधिक महत्व का बनना शुरु हुआ। अपने यहाँ लगभग दस साल से यह क्रिया चल रही है। शिक्षा, बाजार, वित्त, राजनीति, उत्पादन के तरीके, प्राकृतिक संसाधन, रोजगार, मानव समुदाय, ग्रामीण समाज, सभी क्षेत्रों में सूचना, उसका तंत्र, उसकी पहुँच, उसका प्रभाव इसी के इर्द–गिर्द बातें घूम रही हैं। 'सूचना' की यह अभिव्यक्ति कम्प्यूटर, टेलीफोन, मोबाइल, टेलीविजन, केबल नेटवर्क आदि के रूप में सामने आती है। थोड़े से लोगों को इसके फायदे हो रहे हैं। वे पैसे खर्च करते हैं, नये–नये कपड़े पहनते हैं, गाड़ियों पर घूमते हैं और बाजारों में दिखाई देते हैं। लेकिन इनकी संख्या कम है। अधिकतर लोग सूचना के दुष्प्रभाव के शिकार हैं। उनका रोजगार छिन गया है, उनके बच्चे पढ़ नहीं सकते। जिन व्यवस्थाओं में वे रहते हैं वे चरमरा गई हैं। नागरिक सुविधाएं उन तक पहुँचती नहीं हैं। उनकी लगभग एक पीढ़ी अब धार्मिक उन्माद में डूब–उतरा चुकी है। आजादी के 50 साल का बहकावा अब खत्म होना चाहिए। विश्वविद्यालयों के मार्फत पश्चिम से आयातित ज्ञान समाज में फैलेगा, उसे अक्लमंद और समृद्ध बनायेगा, इस झूठ का पर्दाफाश हो चुका है। कोई तो कहे कि राजा नंगा है?

जरूरत है हमें अपनी विद्या जागृत करने की। यह आसान नहीं है। क्योंकि सोये को नहीं जगाना है। जागे को जागृत करना है। हम सबके पेट अपनी ही विद्या के बल पर भरते हैं। औरों के पेट भी हमारी विद्या के बल पर भरते हैं। मिट्टी, पानी, लकड़ी, चमड़ा, लोहा, पेड़–पौधे, सगे–सम्बन्धी, पड़ोसी, साथी, सहचर इनका दर्द हम समझते हैं और हमें बताया जा रहा है कि हम सूचना का राज नहीं समझते? हमें पहचानना होगा कि लड़ाई किससे है और रणक्षेत्र कौन–सा है? सूचना मायावी विद्या का रूप है। इससे मोर्चा वही सभ्यता ले सकती है जिसकी विद्या की परम्परा अटूट है।

इस देश की परम्परा किसानों और कारीगरों की परम्परा है, न अंग्रेजी बोलने वालों की और न मंतर पढ़ने वालों की। यह लोकविद्या की परम्परा है। विश्वविद्यालय का प्रोफेसर विद्या की प्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं है, बल्कि लोकविद्या–परम्परा के तिरस्कार का प्रतीक है।

जो लोग ये मानते हैं कि किसानों और कारीगरों के पास विद्या की अकूत सम्पदा है, कहते हैं बड़ी टूटी–फूटी अवस्था में है, असंगठित है, निजी है। लेकिन साबूत यदि काँटेदार हो तो हम टूटे–फूटे ही भले। संगठन का अर्थ यह नहीं है कि मशीन बना दी जाय। वे नहीं जानते सार्वजनिकता अंग्रेजी बोलने वालों के घरों की नौकरानी नहीं है। विद्या की यह लड़ाई मामूली लड़ाई नहीं बनने वाली है। धर्म, राजनीति, बाजार, शिक्षा सभी में झाड़ू लगेगा, एक–एक कोना साफ करना होगा।

गाँव–गाँव, हर घर और हर मुहल्ले में विद्या के सवाल पर बहस होनी है। बहिष्कृत समाज की शक्ति के संयोजन का वह माहौल बनाना है कि दुश्मन खुद हथियार डाल दे। विद्या की बहस उस आत्मबल को जन्म देगी जिसके बिना यह लड़ाई न लड़ी जा सकती है और न जीती जा सकती है। 'सूचना' होगी तो दिल्ली में अमेरिका होगा, रास्तों पर लड़कियों की रंगीन तस्वीरें होंगी और घर में खाना नहीं होगा। बहुत लोग कहते हुए मिलेंगे कि अब कुछ नहीं किया जा सकता। जो विश्वव्यापी है उससे मुकाबला करने की बेवकूफी की बातें न करें। इनमें मूर्ख भी हैं और बदमाश भी। हमें दोनों की सलाह से बचना है। सब जानते हैं कि अंग्रेजी राज मुश्किल से 100 साल भी नहीं चल पाया। जहाँ लोग रहते हैं और जहाँ किसानों और कारीगरों की विद्याओं के रहमोकरम पर जिन्दगी चलती है वहाँ सूचना का राज बनने के पहले क्यों नहीं ध्वस्त किया जा सकता? जिसका चेहरा राक्षस का है और जिसके हाथ में पिस्तौल है क्या वह गोली चला देगा तभी समझ में आयेगा कि वह हत्यारा है? और गोली भी तो वह चला ही रहा है।

विद्या साफ्टवेयर नहीं है और न विद्या हार्डवेयर ही है। विद्या वह जीवन्त अनुभूति है, मनुष्य की प्रकृति का वह पहलू है जो कला और विज्ञान को अलग नहीं होने देता, वस्तुओं को उनकी बनावट से नहीं बल्कि उनके माहात्म्य से पहचानता है। जब से विश्वविद्यालय बने हैं विद्या पर बहस बन्द है। विद्या पर बहस खोले बगैर केवल अंधेरा है, काँटे हैं और गड्ढे हैं।

बौद्धिक सत्याग्रह विद्या पर बहस खोलने का वह तरीका है जिसमें लोकविद्याधर समाज लोकविद्या का दावा पेश कर सके।

लोकविद्या जन आन्दोलन

जन आन्दोलन और ज्ञान का दृष्टिकोण

विस्थापन आज भारत में सामाजिक आन्दोलनों का सबसे बडा सरोकार बन गया है। यह विस्थापन जमीन, घर, रोजगार, संसाधन और बाजार सभी से हो रहा है। किसानों के आन्दोलन प्रमुख रूप से कृषि उत्पादन का दाम हासिल करने के लिए, कर्ज और बिजली के लिए तथा जबरदस्ती किये जा रहे भूमि अधिग्रहण के खिलाफ होते रहे हैं। आदिवासियों और स्थानीय समाजों के आंदोलन घर, जमीन और जंगल से बेदखली तथा पर्यावरणीय विनाश के खिलाफ चलते रहे हैं। शहरी गरीबों और झोपड़पट्टियों में रहने वालों के संघर्ष हमेशा ही विस्थापन के विरोध में और सामान्य नागरिक व सामाजिक अधिकारों को हासिल करने के लिए होते रहे हैं। वैश्विक बाजार और बड़ी पूँजी की घुसपैठ द्वारा स्थानीय बाजार को तहस–नहस करने के खिलाफ कारीगर और ठेले–गुमटी पर धंधा करने वाले बड़े पैमाने पर लामबंद होते रहे हैं। ये सभी आंदोलन कुछ समय से विस्थापन के विरोध के एक व्यापक आन्दोलन का रूप ले रहे हैं। एक तरफ शासन और प्रशासन की नई व्यवस्थायें इस प्रतिरोध को बड़े पैमाने पर दबाने में लगी हुई हैं, तो दूसरी तरफ लोगों के साथ खड़े सामाजिक कार्यकर्ता एक नई जन एकता को आकार देने के रास्ते खोज रहे हैं।

ये सब विस्थापन के शिकार लोग और समाज ऐसे हैं जो कभी कालेज नहीं गये हैं और अपनी जिंदगी लोकविद्या के बल पर चलाते हैं। लोकविद्या उनका अपना वह ज्ञान है जो उन्होंने विरासत में प्राप्त किया है; काम के स्थान पर, समाज में और सहकर्मियों से सीखा है और जिसको उन्होंने अपनी जरूरत, अनुभव और प्रयोगों के बल पर अपनी तर्क बुद्धि से प्रभावी और समसामयिक बनाया है। विस्थापन उनकी जिंदगी की चौखट में ऐसे बदलाव ले आता है जिनके चलते वे लोकविद्या, यानि अपने ज्ञान के इस्तेमाल से वंचित हो जाते हैं और बाजार में एक सस्ते मजदूर के रूप में खड़े कर दिये जाते हैं। लोकविद्याधर समाज का लोकविद्या से रिश्ता टूटने की इस प्रक्रिया का हर हालत में मुकाबला करना ज़रूरी है। वास्तव में लोकविद्या, यानि लोगों का सोचने का तरीका, उनके मूल्य, उनका संगठन का तरीका, उनका हुनर, ज्ञान, सौन्दर्य बोध और नैतिक संवेदनायें, कुल मिलाकर उनकी ज्ञान की दुनिया ही उनकी शक्ति का प्रमुख स्रोत है। भारत में और सारी दुनिया में फैले किसानों, आदिवासियों, कारीगरों, छोटा–छोटा धंधा करने वालों और विविध स्थानीय समाजों के बीच यदि कुछ समान है, तो वह लोकविद्या ही है। यही इन सबके बीच एकता की कड़ी है। यह समझना जरूरी है कि आज मुक्ति का रास्ता ज्ञान की दुनिया से होकर गुजरता है। लोकविद्या दृष्टिकोण सूचना युग का जनता का दृष्टिकोण है।

लोकविद्या का दावा

दुनिया भर में किसान और आदिवासी एक नया दावा पेश कर रहे हैं। अपनी–अपनी भाषा में और अपने–अपने तरीकों से वे यह कह रहे हैं कि अपने ज्ञान, मूल्यों और विश्वासों के साथ जीना और वह सब ज्ञान प्राप्त करना जो वे चाहते हैं, ये उनके जन्म सिद्ध अधिकार हैं। इन्हें उनसे छीना नहीं जा सकता। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में नये किस्म की हलचल दिखाई दे रही है, जिसमें पूरी दुनिया के शोषित, उत्पीड़ित एवं विस्थापित लोगों की एक नई एकता के संकेत हैं। इस बार इस एकता का आधार लोकविद्या में होना है यानि उनके इर्द–गिर्द के समाजों और प्रकृति की उनकी समझ में जो समान है, उसमें होना है।

इसका यह अर्थ है कि किसानों और आदिवासियों, कारीगरों और महिलाओं तथा छोटा–छोटा धंधा करने वालों और मज़दूरों को लोकविद्या का दावा पेश करना चाहिए। यह कोई जीविकोपार्जन की ज़रूरत भर का दावा नही है, यह एक नई दुनिया बनाने का दावा है। उन्हें यह दावा पेश करना है कि पूँजी और ज्ञान के व्यवसायीकरण को केवल

लोकविद्या ही बुनियादी चुनौती दे सकती है। उन्हें यह दावा भी पेश करना है कि सत्य व सामाजिक और आर्थिक बराबरी के समाज का ज्ञान का आधार केवल लोकविद्या में है। हमें यह समझना होगा कि जब तक ये दावे पेश नहीं किये जाते, तब तक हम बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के अपने असरहीन पूर्वाग्रहों में फँसे रहेंगे। ऐसा लोकविद्या–ज्ञान का दावा हमारे विचारों और कार्यों में एक नई और वास्तविक उड़ान भर दे सकता है, जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में नई सोच को जन्म दे। ऐसे दावों को आकार देने की प्रक्रिया ही लोकविद्या जन आंदोलन है।

लोकविद्या जन आन्दोलन (लो.ज.आ.)

वैश्विक आर्थिक और पर्यावरणीय संकट ने उन विचारों और संस्थाओं को बेनकाब कर दिया है, जिन्होंने बड़े पैमाने पर लोगों को भूखा मारकर और प्रकृति का विनाश करके चंद लोगों की जेबें भरी हैं। लोकविद्या जन आन्दोलन इसी बहुमत जनता का ज्ञान आन्दोलन है, यानि उन लोगों का ज्ञान आंदोलन है, जिन्हें पूँजी के प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों और राज्य की व्यवस्थाओं ने अज्ञानी घोषित कर रखा है। ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि विश्वविद्यालयों के बाहर ज्ञान का सागर है। समाज में ज्ञान का विस्तृत फैलाव है, ऐसा मानने वालों की कोई कमी नही है। यानि लोगों के पास ज्ञान है और उस ज्ञान की अनुभूति भी। और फिर भी न उन लोगों को और न उनके ज्ञान को ही समाज में सम्मान है। उनके ज्ञान के बल पर अच्छी आय नही हो सकती, इसलिए लोग गरीब हैं। सार्वजनिक दुनिया में उनके ज्ञान को सम्मान नही है, इसलिए उनके मूल्य और संस्कृति हाशिये पर पड़े रहते हैं। उनके ज्ञान का जन संगठनों के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, इसलिए उनका कोई राजनैतिक महत्व नहीं है। एक ऐसे राजनैतिक आंदोलन की ज़रूरत है, जिसमें लोग अपने ज्ञान के आधार पर गति पैदा करते हैं। लोकविद्या जन आंदोलन एक ऐसा ही आंदोलन है। लोकविद्या जन आन्दोलन किसानों, कारीगरों, आदिवासियों, छोटा–छोटा धंधा करने वालों, महिलाओं और नौजवानों के आंदोलनों को एक ज्ञान के मंच पर इकट्ठा करने का प्रयास है। यह उनके ज्ञान का मंच है, लोकविद्या का मंच है। ऐसे ही मंच से यह दावा किया जा सकता है कि लोकविद्या में ही समाधान है।

दुनिया में हो रहे और ज्ञान आन्दोलन

दुनिया में कई जगह नये किस्म के आन्दोलन शुरू हुए हैं, ऐसे आन्दोलन जिनमें एक सर्वथा नई राजनैतिक सोच दिखाई देती है और जिन्हें लोकविद्या जन आन्दोलन कहा जा सकता है। भारत में 'लोकविद्या' का अभियान, बोलिविया से शुरू हुआ 'धरती माँ के अधिकार' का आन्दोलन, इक्वाडोर में 'प्रकृति के अधिकार' का विचार, वाया कम्पेसिना नाम के अंतर्राष्ट्रीय किसान संगठन का 'खाद्य सम्प्रभुता' का विचार व अभियान तथा यूरोप व अमेरिका में छात्र आन्दोलन में आकार ले रहे 'ज्ञान के पूँजीवाद' और 'ज्ञान मुक्ति' के विचार एक नई राजनीतिक बहस को जन्म दे रहे हैं। इन सभी में यह आग्रह है कि लोगों के पास ज्ञान होता है और लोकविद्या साइंस के नाम पर प्रसारित ज्ञान से किसी भी अर्थ में कम नहीं है। समझ यह है कि पिछली सदियों में जनता पर और प्रकृति पर जो कहर ढाया गया है और जो इस सूचना युग के नये साम्राज्य में कई गुना बढ़ गया है, उसे वही लोग ठीक कर सकते हैं, जो आधुनिक ज्ञान की व्यवस्थाओं में समा नही गये हैं।

लोकविद्या जन आंदोलन यह दावा पेश करता है कि दुनिया भर में हो रहे ऐसे ज्ञान आंदोलन, संघर्षों का एक नया बिरादराना बना रहे हैं, लोगों का एक विश्वव्यापी ज्ञान आन्दोलन खड़ा कर रहे हैं।

[यह लोकविद्या जन आन्दोलन के प्रथम अधिवेशन (विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी 12–14 नवम्बर 2011) का घोषणापत्र है।]

तैयारी

(1)

सब बदल गया
गलियां और बाजार
खेल और खिलौने
रंग और ढंग
चेहरे और सोच
और भी बहुत कुछ।
दोस्त, तुम ही कहते थे
बदलाव ही प्रकृति
तब क्यों है बेचैनी?
निश्चित ही
तुम उनमें नहीं, जो
मोह में जकड़े,
अहं में अकड़े,
लालच में फंसते
गिरते पड़ते,
जोड़ लेते
चार तिनके
और बांध लेते
सलाहों के पुलिन्दे
फिर टेक लगा शान से
और बड़ी मौज में
उन्हें बांटते,
कभी अधिकार से
कभी बेवजह गमगीन होकर
कहते फिरते
अब तो सब बदल गया।
तुम उनमें नहीं
जो इस बदलाव को
मानते हैं
महज एक भटकाव।
तुम उनमें तो नहीं ही
जो विचरते
परीकथाओं में
या मशगूल रहते
बनाते जाते
हवा में किले।
और तुम उनमें भी नहीं
जो बदलाव के
काले पक्ष पर
प्रहार के उत्सुक
बिछी बिसात को
समझने का दावा कर
खुद हो जाते नदारद!
जानता हूं तुम्हें,
देखा है तुम्हें
बहुत गुस्सा करते
लेकिन तुम उनमें भी नहीं
जो तैश में आकर
कुछ भी कर बैठते।
वैसे भी
शिकायत करते
जिन्दगी कटे, ये
मंजूर नहीं तुम्हें।
मेरे दोस्त! तुम्हारी आंखें
खोलती हैं अतीत के परदे
दिखाती हैं बदलाव के मोड़ ऐसे
जिनमें से होकर हम गुजरे
और बदलाव को
मोड़ ले गये सत्य के पक्ष में।
तुम्हारी आंखें! दिलासा देतीं
सुलगाती हैं सपने, कि
आज भी मोड़ ले जायेंगे
इस बदलाव को सत्य के पक्ष में
दोस्त! क्या बात है?
तब क्यों हो बेचैन?

(2)

दोस्त के चेहरे का रंग बदला
मन का चिन्तन मुख पर छाया
होठों को दबाये मुट्ठी को बांधे
बड़ी देर बाद बोला
यार, सब बदल गया!

लूट के तंत्र, बांटने के ढंग,
लड़ाने के तरीके,
झूठ को सच कर दिखाने
के करिश्में,
भ्रम के जाले
सब तो बदल गया
और हमें
निहत्था कर गया।
और हम? ताकते रह गये!
सींचते रह गये
बूढ़े पौधों के बागीचे!
एकदम अनसुना कर
समय का उद्घोष
कि उनमें नहीं आयेंगे फल
कि नया कुछ गढ़!
यही सोचते निकला हूं घर से
साथ है कुछ बातें, कुछ आवाजें
बीबी-बच्चों की हिदायतें।
बच्चे हैं झुंझलाये
''मैदान भी उनके, खेल भी उनके
भला हम जीतेंगे कैसे?''
बीबी ने भी है ठनकाया
कि इकट्ठा हो गया
अब बहुत कचरा
चाहिए एक झाड़ू नया
तब देख पायेंगे हम
अपने घर का कोना-कोना।
बोली, बुलाओ आज मंडली यहीं
बैठेगें यहीं, विचारेंगे वे बातें सारी
पिछले दिनों से अब तक
इकट्ठा किया है जो सब
उनमें से छांटेंगे उतना
जिसे जलाकर हो उजाला
शेष होगा कचरा, जिसे
जरूरी है बाहर करना।

(3)

तो दोस्त, आया हूं
बुलावा लेकर।
अब तुम भी कस लो कमर
चूक न जायें हम
कहीं ये भी मौसम
बाप-दादों की कमाई
कब तक खाई जाती?
संतानें तो ऐसी कहलाती निकम्मी।
ठीक ही कह गया कोई
''निचोड़ लिया वो सब
निचोड़ सके हम जितना
समीक्षा, आलोचना पर आलोचना
मथ लिया, अपने-अपने बर्तन में
मथ सके हम जितना''
लेकिन उसके आगे जोड़ लें
खूब लड़ भी चुके कि
मक्खन निकला कितना?
समय बदल चुका अब
ये सब कुछ काम न देगा
सदी के चिन्तन का यह दीप
अब आलें में ही शोभा देगा
अपने समय का विचार
खुद हमें ही गढ़ना होगा।
उनके विषय उन्हीं के मुद्दे
उनकी बहस उनके नतीजे
हां या नहीं कुछ भी कहे
हो जाते हम उनके हिस्से!
ये मजबूरी छोड़ो यारों
अपने ढंग से सोचो यारों
नई गंध से, नई मिट्टी से
नये जोश से, नई दृष्टि से
इस अंधड़ से लड़ना होगा
अपने समय का विचार
खुद हमें गढ़ना होगा।

–चित्रा सहस्त्रबुद्धे

लोकविद्या दर्शन

- ज्ञान मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। प्रत्येक मनुष्य के पास ज्ञान होता है।
- लोकविद्या से सभी ज्ञान की शुरूआत होती है और सभी ज्ञान लौटकर लोकविद्या में आता है।
- जो ज्ञान वापस लोकविद्या में नही आता, वह समयान्तर में मनुष्य, समाज और प्रकृति का दुश्मन हो जाता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के जाल में जकड़ी
दुनिया का भविष्य क्या है ?

आजादी के 64 साल का बहकावा अब खत्म होना चाहिये। विश्वविद्यालयों के मार्फत पश्चिम से आयातित ज्ञान समाज में फैलेगा, उसे अक्लमंद और समृद्ध बनायेगा, इस झूठ का पर्दाफाश हो चुका है। कोई तो कहे कि राजा नंगा है ?

इस देश की परम्परा किसानों, आदिवासियों और कारीगरों की परम्परा है, न अंग्रेजी बोलने वालों की और न मंतर पढ़ने वालों की। यह लोकविद्या की परम्परा है।